

इति ज्ञात्वा बुधैर्नित्यं स्वशक्त्या बहुभक्तितः। देयं पात्राय सद्भानं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम् ॥७४॥
सद्रत्नत्रयमण्डितोतिविमलः श्रीमूलसंधे महान् श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुः श्रीकुन्दकुन्दान्वये।
तच्छिष्येण सुपात्रभोजनमहादानक्षणे शर्मणे भूयाच्छान्तिविभोः कथा विरचिता श्रीनेमिदत्तेन वः ॥७५॥

इति कथाकोशे पात्राहारदानफलप्राप्त-श्रीश्रीषेणमहाराजाख्यानं समाप्तम्।

११०. औषधदानफलाख्यानम्

नत्वा श्रीमज्जिनेन्द्राणां भारत्याः सद्गुरोः क्रमान्। कथामौषधदानस्य वक्ष्ये त्रैलोक्यपूजितान् ॥१॥
दीर्घायुः स्वस्थता चित्ते कुष्ठादिव्याधिसंक्षयः। नीरोगता सदानन्दो भवेदौषधदानतः ॥२॥
सौभाग्यं धनधान्यं च रूपलावण्यसम्पदा। तेजोबलं सुखं चैव क्रमेण स्वर्गमोक्षयोः ॥३॥
ततः पात्राय सद्देयं दययान्यत्र च क्वचित्। दानमौषधदसंज्ञं तु हितार्थेदोषवर्जितम् ॥४॥
दानस्यास्य फलं प्राप्तं यदनेकैर्महात्मभिः। तत्फलं शक्यते केन वर्णयितुं जगत्त्रये ॥५॥
फलमौषधदानस्य प्राप्तं वृषभसेनया। तदहं जिनसूत्रेण वक्ष्ये संक्षेपतः श्रिये ॥६॥

रक्षा कर उन्हें सुखी किया। अपना संसार के प्रति जो कर्तव्य था उसे पूरा कर इन्होंने निर्वाण लाभ किया। यह सब पात्रदान का फल है। इसलिए जो लोग पात्रों को भक्ति से दान देंगे वे भी नियम से ऐसा ही उच्च सुख लाभ करेंगे। यह बात ध्यान में रखकर सत्पुरुषों का कर्तव्य है, कि वे प्रतिदिन कुछ न कुछ दान अवश्य करें। यही दान स्वर्ग और मोक्ष के सुख का देने वाला है ॥५८-७४॥

मूलसंध में कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा में श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुए। रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारी थे। इन्हीं गुरु महाराज की कृपा से मुझ अल्पबुद्धि नेमिदत्त ब्रह्मचारी ने पात्रदान के सम्बन्ध में श्रीशान्तिनाथ भगवान् की पवित्र कथा लिखी है। यह कथा मेरी परम शान्ति की कारण हो ॥७५॥

११०. औषधिदान की कथा

जिन भगवान् जिनवाणी और जैन साधुओं के चरणों को नमस्कार कर औषधिदान के सम्बन्ध की कथा लिखी जाती हैं ॥१॥

निरोगी होना, चेहरे पर सदा प्रसन्नता रहना, धनादि विभूति का मिलना, ऐश्वर्य का प्राप्त होना, सुन्दर होना, तेजस्वी और बलवान् होना और अन्त में स्वर्ग या मोक्ष का सुख प्राप्त करना ये सब औषधिदान के फल हैं। इसीलिए जो सुखी होना चाहते हैं उन्हें निर्दोष औषधिदान करना उचित है। इस औषधिदान के द्वारा अनेक सज्जनों ने फल प्राप्त किया है, उन सबके सम्बन्ध में लिखना औरों के लिए नहीं तो मुझ अल्पबुद्धि के लिए तो अवश्य असम्भव है। उनमें से एक वृषभसेना का पवित्र चरित यहाँ संक्षिप्त में लिखा जाता है। आचार्यों ने जहाँ औषधिदान देने वाले का उल्लेख किया है वहाँ वृषभसेना का प्रायः कथन आता है। उन्हीं का अनुकरण मैं भी करता हूँ ॥२-६॥

अथेह भरतक्षेत्रे जिनजन्मपवित्रिते। नाम्ना जनपदे देशे सम्पदा सारसंभृते ॥७॥
 कावेरीपत्तने राजा प्रजानां हितकारकः। उग्रसेनोभवन्नाम्ना राजविद्याविराजितः ॥८॥
 श्रेष्ठी धनपतिस्तत्र जिनपादार्चने मतिः। तस्य भार्या महासाध्वी धनश्रीः श्रीरिवापरा ॥९॥
 तयोः पूर्वार्जितैः पुण्यैः रूपलावण्यमण्डिता। पुत्री वृषभसेनाख्या जाता कीर्तिवदुज्ज्वला ॥१०॥
 तस्य रूपवती धात्री नित्यं स्नानादिकं मुदा। करोति बहुयत्नेन पुण्यात्किं वा न जायते ॥११॥
 श्रीमद्वृषभसेनायाः स्नानवारिभरेण च। जातायां तत्र गर्त्तायां कुक्कुरं रोगपीडितम् ॥१२॥
 एकदा सा समालोक्य धात्रिका पतितोत्थितम्। गतरोगहाजालं तत्क्षणात् जातविस्मया ॥१३॥
 पुत्रीस्नानजलं व्यक्तं कारणं रोगसंक्षये। इत्यालोच्य समादाय तज्जलं रोगनाशकम् ॥१४॥
 शीघ्रं तेन जलेनैव परीक्षार्थं महादरात्। निजमातुर्महच्चक्षुर्व्याधिना संकदर्थिते ॥१५॥
 द्वादशवर्षपर्यन्तं तस्याः कुथितलोचने। प्रक्षाल्य निर्मलीकृत्य विलोक्यात्यन्तसुन्दरे ॥१६॥

भगवान् के जन्म से पवित्र इस भारतवर्ष का जनपद नाम के देश में नाना प्रकार उत्तमोत्तम सम्पत्ति से भरा अतएव अपनी सुन्दरता से स्वर्ग की शोभा को नीची करने वाला कावेरी नाम का नगर है। जिस समय की वह कथा है, उस समय कावेरी नगर के राजा उग्रसेन थे। उग्रसेन प्रजा के सच्चे हितैषी और राजनीति के अच्छे पण्डित थे ॥७-८॥

यहाँ धनपति नाम का एक अच्छा सद्गृहस्थ सेठ रहता था। जिन भगवान् की पूजा-प्रभावनादि से उसे अत्यन्त प्रेम था। उसकी स्त्री धनश्री उसके घर की मानों दूसरी लक्ष्मी थी। धनश्री सती और बड़े सरल मन की थी। पूर्व पुण्य से इसके वृषभसेना नाम की एक देवकुमारी से सुन्दरी और सौभाग्यवती लड़की हुई। सच है-पुण्य के उदय से क्या प्राप्त नहीं होता। वृषभसेना की धाय रूपवती उसे सदा नहाया-धुलाया करती थी। उसके नहाने का पानी बह-बह कर एक गड्ढे में जमा हो गया था। एक दिन की बात है कि रूपमती वृषभसेना को नहला रही थी। उसी समय एक महारोगी कुत्ता उस गड्ढे में, जिसमें कि वृषभसेना के नहाने का पानी इकट्ठा हो रहा था, गिर पड़ा। क्या आश्चर्य की बात है कि जब वह उस पानी में से निकला तो बिल्कुल नीरोग दीख पड़ा। रूपवती उसे देखकर चकित हो रही है ॥९-१२॥

उसने सोचा-केवल साधारण जल से इस प्रकार रोग नहीं जा सकता। पर वह वृषभसेना के नहाने का पानी है। उसमें उसके पुण्य का कुछ भाग जरूर होना चाहिए। जान पड़ता है वृषभसेना कोई बड़ी भाग्यशालिनी लड़की है। ताज्जुब नहीं कि यह मनुष्य रूपिणी कोई देवी हो! नहीं तो इसके नहाने के जल में ऐसी चकित करने वाली करामात हो ही नहीं सकती। इस पानी की और परीक्षा कर देख लू, जिससे और भी दृढ़ विश्वास हो जाएगा कि यह पानी सचमुच ही क्या रोगनाशक है? ॥१३-१५॥

तब रूपवती थोड़े से उस पानी को लेकर अपनी माँ के पास आई। उसकी माँ की आँखें कोई

ततस्तेनाम्बुना सर्वरोगसन्तानहारिणा। ख्याता रूपवती जाता सर्वव्याधिविनाशने ॥१७॥
 अक्षिजं कुक्षिजं रोगं शिरोजं गरलोद्भवम्। क्षयं नयति सा तत्र सर्वकुष्ठादिकं घनम् ॥१८॥
 अथैकदोशसेनेन स्वमन्त्री रणपिङ्गलः। मेघपिङ्गलराजस्योपरि संप्रेषितो द्रुतम् ॥१९॥
 ततोऽसौ बहुसैन्येन तद्देशं संप्रविष्टवान्। जातो महाज्वरी तत्र विषोदकनिषेवणात् ॥२०॥
 पश्चात्स्वगृहमायातो रूपवत्या जलेन सः। प्राणीव गुरुवाक्येन कृतो रोगविवर्जितः ॥२१॥
 उग्रसेनोपि भूभर्ता कोपानलकदर्शितः। मेघपिङ्गलराजस्य बन्धनार्थं गतो जवात् ॥२२॥
 तथासौ विषनीरोत्थमहाज्वरवितर्जितः। व्याघुट्यैव समायातः ससैन्यो मानवर्जितः ॥२३॥

बारह वर्षों से खराब हो रही थी। इससे वह बड़ी दुःख में थी। आँखों को रूपवती ने उस जल से धोकर साफ किया और देखा तो उनका रोग बिल्कुल जाता रहा। वे पहले से बड़ी सुन्दर हो गईं रूपवती को वृषभसेना के पुण्यवती होने में अब कोई सन्देह न रह गया। इस रोग नाश करने वाले जल के प्रभाव से रूपवती की चारों ओर बड़ी प्रसिद्धि हो गई। बड़ी-बड़ी दूर के रोगी अपने रोग का इलाज कराने को आने लगे। क्या आँख के रोग को, क्या पेट के रोग को, क्या सिर सम्बन्धी पीड़ाओं की और क्या कोढ़ वगैरह रोगों को, यही नहीं किन्तु जहर सम्बन्धी असाध्य से असाध्य रोगों को भी रूपवती केवल एक इसी पानी से आराम करने लगी। रूपवती इससे बड़ी प्रसिद्ध हो गई ॥१६-१८॥

उग्रसेन और मेघपिंगल राजा की पुरानी शत्रुता चली आ रही थी। उस समय उग्रसेन ने अपने मन्त्री रणपिंगल को मेघपिंगल पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। रणपिंगल सेना लेकर मेघपिंगल पर जा चढ़ा और उसके सारे देश को उसने घेर लिया। मेघपिंगल ने शत्रु को युद्ध में पराजित करना कठिन समझ दूसरी युक्ति से उसे देश से निकाल बाहर करना विचारा और उसके लिए उसने ये योजना की कि शत्रु की सेना में जिन-जिन कुँए, बावड़ी से पीने को जल आता था उन सबमें अपने चतुर जासूसों द्वारा विष घुलवा दिया। फल यह हुआ कि रणपिंगल की बहुत सी सेना तो मर गई और बची हुई सेना को साथ लिए वह स्वयं भी भाग कर अपने देश लौट आया। उसकी सेना पर तथा उस पर जो विष का असर हुआ था, उसे रूपवती ने उसी जल से आराम किया। गुरुओं के वचनामृत से जैसे जीवों को शान्ति मिलती है रणपिंगल को उसी प्रकार शान्ति रूपवती के जल से मिली और वह रोगमुक्त हुआ ॥१९-२१॥

रणपिंगल का हाल सुनकर उग्रसेन को मेघपिंगल पर बड़ा क्रोध आया तब स्वयं उन्होंने उस पर चढ़ाई की। उग्रसेन ने अब की बार अपने जानते सावधानी रखने में कोई कसर न की। पर भाग्य का लेख किसी तरह नहीं मिटता। मेघपिंगल का चक्र उग्रसेन पर भी चल गया। जहर मिले जल को पीकर उनकी भी तबियत बहुत बिगड़ गई तब जितनी जल्दी उनसे बन सका अपनी राजधानी में उन्हें लौट आना पड़ा। उनका भी बड़ा ही अपमान हुआ। रणपिंगल से उन्होंने, वह कैसे आराम हुआ था, इस बाबत पूछा। रणपिंगल ने रूपवती का जल के बारे में बतलाया। उग्रसेन ने तब उसी

रणपिङ्गलतो ज्ञात्वा तज्जलं रोगनाशनम्। राजा याचितवांस्तूर्णं स्वरोगक्षयहेतवे ॥२४॥
तदा धनश्रिया प्रोक्तं श्रेष्ठिनं प्रति भीतया। स्वामिन्कथं सुतास्नानजलं भूपतिमस्तके ॥२५॥
क्षेप्यते तत्समाकर्ण्य जगौ श्रेष्ठी गरिष्ठधीः। यदि पृच्छति राजासौ तदास्माभिः प्रकथ्यते ॥२६॥
सत्यं जलस्वरूपं हि न दोषः स्यादिति ध्रुवम्। ब्रुवन्ति न कदा सन्तः प्राणत्यागेष्यसत्यकम् ॥२७॥
एवं मंत्रे कृते तेन जलेनैव महीपतिः। उग्रसेनः कृतो धात्र्या तया रोगवर्जितः ॥२८॥
नीरोगेण ततो राज्ञा पृष्ठा रूपवती स्फुटम्। सर्वं जगाद तत्तोयस्वरूपं शर्मकारणम् ॥२९॥
ततो राज्ञा समाहूतः श्रेष्ठी धनपतिः सुधीः। तत्कालं स समायातो दुर्लङ्घ्यं राजशासनम् ॥३०॥
दत्त्वा तस्मै महामानं राज्ञा श्रेष्ठी स याचितः। श्रीमद्वृषभसेनां तां परिणेतुं गुणोज्ज्वलाम् ॥३१॥
श्रुत्वासौ भूपतेर्वाक्यं जगौ श्रेष्ठी सुनिश्चलः। राजदेवेन्द्रचन्द्रार्कनरेन्द्रैः खचरैः कृताम् ॥३२॥
पूजामाष्टाह्निकीं पूतां स्वर्गमोक्षसुखप्रदाम्। जिनेन्द्रप्रतिमानां च स्नपनं पूजनं तथा ॥३३॥
करोषि यदि सद्भक्त्या पञ्जरस्थान् विमुञ्चसि। पक्षिणश्च तथा कारागारान्मुञ्चसि सत्वरम् ॥३४॥
मनुष्याश्च तदा तुभ्यं ददामि मम पुत्रिकाम्। रूपसौभाग्यसत्पुण्य-मण्डितां कुलदीपिकाम् ॥३५॥

समय अपने आदमियों को जल ले आने के लिए सेठ के यहाँ भेजा। अपनी लड़की का स्नान-जल लेने को राजा के आदमियों को आया देख सेठानी धनश्री ने अपने स्वामी से कहा-क्यों जी, अपनी वृषभसेना का स्नान-जल राजा के सिर पर छिड़का जाए यह तो उचित नहीं जान पड़ता। सेठ ने कहा-तुम्हारा यह कहना ठीक है, परन्तु जिसके लिए दूसरा कोई उपाय नहीं तब क्या किया जाये। हम तो जान-बूझकर ऐसा नहीं करते हैं और न सच्चा हाल किसी से छिपाते हैं, तब इससे अपना तो कोई अपराध नहीं हो सकता। यदि राजा साहब ने पूछा तो हम सब हाल उनसे यथार्थ कह देंगे। सच है-अच्छे पुरुष प्राण जाने पर भी झूठ नहीं बोलते। दोनों ने विचार कर रूपवती को जल देकर उग्रसेन के महल पर भेजा। रूपवती ने उस जल को राजा के सिर पर छिड़क कर उन्हें आराम कर दिया। उग्रसेन रोगमुक्त हो गए। उन्हें बहुत खुशी हुई रूपवती से उन्होंने उस जल का हाल पूछा। रूपवती कोई बात न छुपाकर जो बात सच्ची थी वह राजा से कह दी। सुनकर राजा ने धनपति सेठ को बुलाया और उसका बड़ा आदर-सम्मान किया। वृषभसेना का हाल सुनकर ही उग्रसेन की इच्छा उसके साथ ब्याह करने की हो गई थी और इसीलिए उन्होंने मौका पाकर धनपति से अपनी इच्छा कह सुनाई। धनपति ने उसके उत्तर में कहा-राजराजेश्वर, मुझे आपकी आज्ञा मान लेने में कोई रुकावट नहीं है। पर इसके साथ आपको स्वर्ग-मोक्ष की देने वाली और जिसे इन्द्र, स्वर्गवासी देव, चक्रवर्ती, विद्याधर, राजा-महाराजा आदि महापुरुष बड़ी भक्ति के साथ करते हैं। ऐसी अष्टाह्निका पूजा करनी होगी और भगवान् का खूब उत्सव के साथ अभिषेक करना होगा और आपके यहाँ जो पशु-पक्षी पिंजरो में बन्द हैं, उन्हें तथा कैदियों को छोड़ना होगा। ये सब बातें आप स्वीकार करें तो मैं वृषभसेना का ब्याह आपके साथ कर सकता हूँ। उग्रसेन ने धनपति की सब बातें स्वीकार कीं

उग्रसेनस्तदा सर्वं कृत्वा राजा महामुदा। परिणीय महाभूत्या तस्य पुत्रीं सुखप्रदाम् ॥३६॥
 कृत्वा पट्टमहाराज्ञीं वल्लभां तां तथैव च। अन्यत्कार्यं परित्यज्य नित्यं क्रीडां करोति सः ॥३७॥
 तदा वृषभसेना च प्राप्य राज्ञीपदं महत्। दिव्यान्भोगान्प्रभुञ्जाना पूर्वपुण्यप्रसादतः ॥३८॥
 पूजयन्ती जगत्पूज्याञ्जिनास्वर्गापवर्गदान्। दिव्यैरष्टमहाद्रव्यैः स्नपनादिभिरुत्तमैः ॥३९॥
 मानयन्ती महासाधून्मानैर्दानैश्चतुर्विधैः। पालयन्ती व्रतं शीलं स्वोचितं सारशर्मदम् ॥४०॥
 कुर्वती परया प्रीत्या सम्मानं च सधर्मिणाम्। निजोन्नतेः फलं तद्धि यद्भक्तिः स्यात्सधर्मिणाम् ॥४१॥
 इत्यादिकं जगत्पूज्यं जिनधर्मं सुखप्रदम्। संकुर्वाणा लसद्भक्त्या सा सती सुखतः स्थिता ॥४२॥
 अथ तत्र महाराजो वाराणस्याः सुदुष्टधीः। नामतः पृथिवीचन्द्रः कारागारे स तिष्ठति ॥४३॥
 स तद्विवाहकालेपि दुष्टत्वान्नैव मोचितः। जन्तोरतीव दुष्टस्य क्व भवेद्धन्धनक्षयः ॥४४॥
 पृथिवीचन्द्रकस्यास्य राज्ञो राज्ञी प्रवर्तते। या नारायणदत्ताख्या तया मंत्रं सुमंत्रिभिः ॥४५॥
 कृत्वोच्चैः पृथिवीचन्द्रमोचनार्थं सुकारिताः। नाम्ना वृषभसेनायाः शाला दानस्य सर्वतः ॥४६॥

और उसी समय उन्हें कार्य में भी परिणत कर दिया ॥२२-३६॥

वृषभसेना का ब्याह हो गया। सब रानियों में पट्टरानी का सौभाग्य उसे ही मिला। राजा ने अब अपना राजकीय कामों से बहुत कुछ सम्बन्ध कम कर दिया। उनका प्रायः समय वृषभसेना के साथ सुखोभोग में जाने लगा। वृषभसेना पुण्योदय से राजा की खास प्रेम-पात्र हुई स्वर्ग सरीखे सुखों को वह भोग ने लगी। यह सब कुछ होने पर भी वह अपने धर्म-कर्म को थोड़ा भी न भूली थी। वह जिन भगवान् की सदा जलादि आठ द्रव्यों से पूजा करती, साधुओं को चारों प्रकार का दान देती, अपनी शक्ति के अनुसार व्रत, तप, शील, संयमादि का पालन करती और धर्मात्मा सत्पुरुषों का अत्यन्त प्रेम के साथ आदर-सत्कार करती और सच है-पुण्योदय से जो उन्नति हुई, उसका फल तो यही है कि साधर्मियों से प्रेम हो, हृदय में उनके प्रति उच्च भाव हों। वृषभसेना का अपना जो कर्तव्य था, उसे पूरा करती, भक्ति से जिनधर्म की जितनी बनती उतनी सेवा करती और सुख से रहा करती थी ॥३७-४२॥

राजा उग्रसेन के यहाँ बनारस का राजा पृथ्वीचन्द्र कैद था और वह अधिक दुष्ट था। पर उग्रसेन का तो तब भी यही कर्तव्य था कि वे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ब्याह के समय उसे भी छोड़ देते। पर ऐसा उन्होंने नहीं किया। यह अनुचित हुआ अथवा यों कहिए कि जो अधिक दुष्ट होते हैं उनका भाग्य ही ऐसा होता है जो वे मौके पर भी बन्धन मुक्त नहीं हो पाते ॥४३-४४॥

पृथ्वीचन्द्र की रानी का नाम नारायणदत्ता था। उसे आशा थी कि उग्रसेन अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वृषभसेना के साथ ब्याह के समय मेरे स्वामी को अवश्य छोड़ देंगे। पर उसकी यह आशा व्यर्थ हुई पृथ्वीचन्द्र तब भी न छोड़े गए। यह देख नारायणदत्ता ने अपने मंत्रियों से सलाह ले पृथ्वीचन्द्र को छुड़ाने के लिए एक दूसरी युक्ति की और उसमें उसे मनचाही सफलता भी प्राप्त हुई उसने अपने यहाँ वृषभसेना के नाम से कई दानशालाएँ बनवाई कोई विदेशी या स्वदेशी हो सबको

वाराणस्यां महावस्तुरसषट्कसमन्विताः। तासु वै भोजनं कृत्वा यथेष्टं ब्राह्मणादयः ॥४७॥
 कावेरीपत्तने तुष्टा आगच्छन्ति निरन्तरम्। तेभ्यस्तां वार्त्तिकां श्रुत्वा रुष्टा रूपवती तदा ॥४८॥
 कथं वृषभसेने त्वं वाराणस्यां क्षुधाहराः। मामनापृच्छ्य सद्दानशालाः कारयसीति च ॥४९॥
 सावोचतत्समाकर्ण्य प्रोक्तं वृषभसेनया। नाकारिता मया मातर्मन्नाम्ना किन्तु केन वै ॥५०॥
 केनचित्कारणेनैव कारिता सन्ति ताः शुभे। तासां शुद्धिं कुरु त्वं च तवानन्दो भविष्यति ॥५१॥
 ज्ञात्वा चरैस्ततो धात्र्या सर्वं च कथितं मुदा। श्रीमद्वृषभसेनाग्रे तद्दानस्यैव कारणम् ॥५२॥
 तथा च भूपतेः प्रोक्त्वा कारागारात्तदा द्रुतम्। स राजा पृथिवीचन्द्रो मोचितः प्रीतितस्तराम् ॥५३॥
 ततः पृथिवीचन्द्रेण फलकेऽत्यन्तसुन्दरे। राज्ञो वृषभसेनायाः शुभे रूपे च कारिते ॥५४॥

उनमें भोजन करने को मिलता था। उन दानशालाओं में बढ़िया से बढ़िया छहों रसमय भोजन कराया जाता था। थोड़े ही दिनों में इन दानशालाओं की प्रसिद्धि चारों ओर हो गई। जो इनमें एक बार भी भोजन कर जाता वह फिर उनकी तारीफ करने में कोई कमी न करता था। बड़ी-बड़ी दूर से इनमें भोजन करने को लोग आने लगे। कावेरी के भी बहुत से ब्राह्मण यहाँ भोजन कर जाते थे। उन्होंने इन शालाओं की बहुत तारीफ की ॥४५-४८॥

रूपवती को इन वृषभसेना के नाम से स्थापित की गई दानशालाओं का हाल सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही उसे वृषभसेना पर इस बात से बड़ा गुस्सा आया कि मुझे बिना पूछे उसने बनारस में ये शालाएँ बनवाई ही क्यों? और उसका उसने वृषभसेना को उलाहना भी दिया। वृषभसेना ने तब कहा—माँ, मुझ पर तुम व्यर्थ ही नाराज होती हो। न तो मैंने कोई दानशाला बनारस में बनवाई और न मुझे उनका कुछ हाल ही मालूम है। यह सम्भव हो सकता है कि किसी ने मेरे नाम से उन्हें बनायी हो। पर इसका शोध लगाना चाहिए कि किसने ये शालाएँ बनवाई और क्यों बनवाई? आशा है पता लगाने से सब रहस्य ज्ञात हो जाएगा। रूपवती ने तब कुछ जासूसों को उन शालाओं की सच्ची हकीकत जानने को भेजा। उनके द्वारा रूपवती को मालूम हुआ कि वृषभसेना के ब्याह के समय उग्रसेन ने सब कैदियों को छोड़ने की प्रतिज्ञा की थी। उस प्रतिज्ञा के अनुसार पृथ्वीचन्द्र को उन्होंने न छोड़ा। यह बात वृषभसेना को जान पड़े, उसका ध्यान इस ओर आकर्षित करने के लिए ये दान-शालाएँ उनके नाम से पृथ्वीचन्द्र की रानी नारायणदत्ता ने बनवाई हैं। रूपवती ने यह सब हाल वृषभसेना से कहा। वृषभसेना ने तब उग्रसेन से प्रार्थना कर उसी समय पृथ्वीचन्द्र को छुड़वा दिया। पृथ्वीचन्द्र वृषभसेना के इस उपकार से बड़ा कृतज्ञ हुआ। उसने इस कृतज्ञता के वश हो उग्रसेन और वृषभसेना का एक बहुत बढ़िया चित्र तैयार करवाया। उस चित्र में दोनों राजा-रानी के पाँवों में सिर झुकाया हुआ अपना चित्र भी पृथ्वीचन्द्र ने खिचवाया। वह चित्र फिर उनको भेंट कर उसने वृषभसेना से कहा—माँ, तुम्हारी कृपा से मेरा जन्म सफल हुआ। आपकी इस दया का मैं जन्म-जन्म में ऋणी रहूँगा। आपने इस समय मेरा जो उपकार किया उसका बदला तो मैं क्या चुका सकूँगा पर

ययोरधो निजं रूपं सप्रणामं च कारितम्। पश्चात्तयोः प्रणम्योच्चैः फलकस्तेन दर्शितः ॥५५॥
 उक्तं वृषभसेनायास्त्वं भो देवि ममाम्बिका। त्वत्प्रसादेन मे जातं जन्मेति सफलं भुवि ॥५६॥
 ततः सन्तोषमासाद्य राज्ञा सम्मानपूर्वकम्। भणितश्चोग्रसेनेन वाराणस्याः स भूपतिः ॥५७॥
 गन्तव्यं भो त्वया मेघपिङ्गलस्योपरि द्रुतम्। श्रुत्वेति पृथिवीचन्द्रो तं नत्वा स्वपुरीं गतः ॥५८॥
 मेघपिङ्गलराजासौ तदाकर्ण्य विचार्य च। ममायं पृथिवीचन्द्रो मर्मभेदीति निश्चितम् ॥५९॥
 समागत्योग्रसेनस्य सामन्तो जनि भक्तितः। पुण्येन मित्रतामेति शत्रुः स्वैरं न संशयः ॥६०॥
 अथैकदोग्रसेनेन प्रतिज्ञेयं कृता मुदा। ममास्थानस्थितस्योच्चैरागमिष्यति यद्ध्रुवम् ॥६१॥
 तस्याहं प्राभूतस्यार्द्धं मेघपिङ्गलकाय च। अर्धं वृषभसेनायै दास्यामीति तथा सति ॥६२॥
 रत्नकम्बलयोर्युग्ममैकदैव समागतम्। एकैकं तं ददौ राजा ताभ्यां कृत्वा समानकम् ॥६३॥
 किं धनं कांचनं वस्त्रं किमायुश्च परिक्षयि। परोपकृतये प्रोक्तं पालनीयं वचो बुधैः ॥६४॥

उसकी तारीफ में कुछ कहने तक के लिए मेरे पास उपयुक्त शब्द नहीं है। पृथ्वीचन्द्र की यह नम्रता यह विनयशीलता देखकर उग्रसेन उस पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसका तब बड़ा आदर-सत्कार किया ॥४९-५६॥

मेघपिंगल उग्रसेन का शत्रु था, जिसका जिकर ऊपर आया है। उग्रसेन से वह भले ही बिल्कुल न डरता हो, पृथ्वीचन्द्र से बहुत डरता था। उसका नाम सुनते ही वह काँप उठता था। उग्रसेन को यह बात मालूम थी। इसलिए अब की बार उन्होंने पृथ्वीचन्द्र को उस पर चढ़ाई करने की आज्ञा की। उनकी आज्ञा सिर पर चढ़ा पृथ्वीचन्द्र अपनी राजधानी में गया और तुरंत उसने अपनी सेना को मेघपिंगल पर चढ़ाई करने की आज्ञा की। सेना के प्रयाण का बाजा बजने वाला ही था कि कावेरी नगर से खबर आ गई “अब चढ़ाई की कोई जरूरत नहीं। मेघपिंगल स्वयं महाराज उग्रसेन के दरबार में उपस्थित हो गया है।” बात यह थी कि मेघपिंगल पृथ्वीचन्द्र के साथ लड़ाई में पहले कई बार हार चुका था। इसलिए वह उससे बहुत डरता था। यही कारण था कि उसने पृथ्वीचन्द्र से लड़ना उचित न समझा। तब अगत्या उसे उग्रसेन की शरण में आ जाना पड़ा। अब वह उग्रसेन का सामन्त राजा बन गया। सच है, पुण्य के उदय से शत्रु भी मित्र हो जाते हैं ॥५७-६०॥

एक दिन दरबार लगा हुआ था। उग्रसेन सिंहासन पर अधिष्ठित थे। उस समय उन्होंने एक प्रतिज्ञा की-आज सामन्त-राजाओं द्वारा जो भेंट आयेगी, वह आधी मेघपिंगल की और आधी श्रीमती वृषभसेना की भेंट होगी। इसलिए कि उग्रसेन महाराज की अपने मेघपिंगल पर पूरी कृपा हो गई थी। आज और बहुत-सी धन-दौलत के सिवा दो बहुमूल्य सुन्दर कम्बल उग्रसेन की भेंट में आए। उग्रसेन ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार भेंट का आधा हिस्सा मेघपिंगल के यहाँ और आधा हिस्सा वृषभसेना के यहाँ पहुँचा दिया। धन-दौलत, वस्त्राभूषण, आयु आदि ये सब नाश होने वाली वस्तुएँ हैं, तब इनका प्राप्त करना सफल तभी हो सकता है कि ये परोपकार में लगाई जायें, इनके द्वारा दूसरों का भला हो ॥६१-६४॥

मेघपिङ्गलभार्या या सैकदा तं सुकम्बलम्। प्रयोजनेन प्रावृत्य रूपवत्याः समीपके ॥६५॥
 गता तत्र प्रमादेन परिवर्त्तोभवत्तदा। तयोः कम्बलयोः कष्टं प्रमादो न सुखायते ॥६६॥
 तदा वृषभसेनायाः प्रावृत्यैव च कम्बलम्। उग्रसेनसभामध्ये स मुग्धो मेघपिङ्गलः ॥६७॥
 सेवार्थी चैकदा यातस्तं दृष्ट्वा भूपतिस्तदा। महाकोपेन सन्तप्तो वह्निर्वा घृतयोगतः ॥६८॥
 तदा भूपतिमालोक्य सकोपं मेघपिङ्गलः। ममायं कुपितो राजा ज्ञात्वेति प्रपलायितः ॥६९॥
 सुदूरं गतवाञ्छीघ्नं महाहयवशीकृतः। दुर्जनाद्दुर्भावाद्वा सज्जनो गुणमण्डितः ॥७०॥
 उग्रसेनेन कोपाग्निसन्तप्तेनाविवेकिना। सती वृषभसेना सा समुद्रे पातिता वृथा ॥७१॥
 धिक्कोपत्वं विमूढत्वं याभ्यां जीवो वशीकृतः। कदाचिन्नैव जानाति युक्तायुक्तविचारणम् ॥७२॥
 तया श्रीजिनपादाब्जभ्रमर्या विहिता दृढम्। प्रतिज्ञा यद्यहं घोरादेतस्मादुपसर्गतः ॥७३॥
 उद्धरिष्यामि तच्चित्रं करिष्यामि महातपः। श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रोक्तं जरामरणनाशनम् ॥७४॥

एक दिन मेघपिंगल की रानी इस कम्बल को ओढ़ किसी आवश्यक कार्य के लिए वृषभसेना के महल आयी। पाठकों को याद होगा कि ऐसा ही एक कम्बल वृषभसेना के पास भी था। आज वस्त्रों के उतारने और पहरने में भाग्य से मेघपिंगल की रानी का कम्बल वृषभसेना के कम्बल से बदल गया। उसे इसका कुछ ख्याल न रहा और वह वृषभसेना का कम्बल ओढ़े ही अपने महल आ गई। कुछ दिनों बाद मेघपिंगल को राज-दरबार में जाने का काम पड़ा। वह वृषभसेना के इसी कम्बल को ओढ़े चला गया। कम्बल को ओढ़े मेघपिंगल को देखते ही उग्रसेन के क्रोध का कुछ ठिकाना न रहा। उन्होंने वृषभसेना के कम्बल को पहचान लिया। उनकी आँखों से आग की-सी चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्हें काटो तो खून नहीं। महारानी वृषभसेना का कम्बल इसके पास क्यों और कैसे गया? इसका कोई गुप्त कारण जरूर होना चाहिए। बस, यह विचार उनके मन में आते ही उनकी अजब हालत हो गई। उग्रसेन का अपने पर अकारण क्रोध देखकर मेघपिंगल को इसका कुछ भी कारण न आया। पर ऐसी दशा में उसने अपना वहाँ रहना उचित न समझा। वह उसी समय वहाँ से भागा और एक अच्छे तेज घोड़े पर सवार हो बहुत दूर निकल गया। जैसे दुर्जनों से डरकर सत्पुरुष दूर जा निकलते हैं। उसे भागता देख उग्रसेन को सन्देह और बढ़ा। उन्होंने तब एक ओर तो मेघपिंगल को पकड़ लाने के लिए अपने सवारों को दौड़ाया और दूसरी ओर क्रोधाग्नि से जलते हुए आप वृषभसेना के महल पहुँचे। वृषभसेना से कुछ न कह सुनकर तूने अमुक अपराध किया है, ऐसा कहकर दोनों को एक साथ समुद्र में फिकवाने का उन्होंने हुक्म दे दिया। बेचारी निर्दोष वृषभसेना राजाज्ञा के अनुसार समुद्र में डाल दी गयी। उस क्रोध को धिक्कार! उस मूर्खता को धिक्कार! जिसके वश हो लोग योग्य और अयोग्य कार्य का भी विचार नहीं कर पाते। अजान मनुष्य किसी को कोई कितना ही कष्ट क्यों न दे, दुःखों की कसौटी पर उसे कितना ही क्यों न चढ़ावें, उसकी निरपराधता को अपनी क्रोधाग्नि में क्यों न झोंक दें, पर यदि वह कष्ट सहने वाला मनुष्य निरपराध

तदा तस्या विशुद्धाया महाशीलप्रभावतः। जलदेवतया तत्र कृतं सिंहासनादिकम् ॥७५॥
 प्रातिहार्यं महाभक्त्या जगच्चेतोनुरंजनम्। अहो भव्या न तच्चित्रं सच्छीलात्किं न जायते ॥७६॥
 महागिर्जलतामेति स्थलतामेति सागरः। शत्रुश्च मित्रतामेति सुधात्वं याति दुर्विषम् ॥७७॥
 सच्छीलेन यशः पुण्यं निर्मलं सारसम्पदा। भवन्ति स्वर्गसौख्यानि क्रमेण परमं पदम् ॥७८॥

है, निर्दोष है, उसका हृदय पवित्रता से सना है, रोम-रोम में उसके पवित्रता का वास है तो निःसन्देह उसका कोई बाल बाँका नहीं कर सकता। ऐसे मनुष्यों को कितना ही कष्ट हो, उससे उनका हृदय रत्ती भर भी विचलित न होगा। बल्कि जितना-जितना वह इस परीक्षा की कसौटी पर चढ़ता जायेगा उतना-उतना ही अधिक उसका हृदय बलवान् और निर्भीक बनता जाएगा। उग्रसेन महाराज भले ही इस बात को न समझें कि वृषभसेना निर्दोष है, उसका कोई अपराध नहीं, पर पाठकों को अपने हृदय में इस बात का अवश्य विश्वास है, न केवल विश्वास ही है किन्तु बात भी वास्तव में यही सत्य है कि वृषभसेना निरपराध है। वह सती है, निष्कलंक है। जिस कारण उग्रसेन महाराज उस पर नाराज हुए थे, वह कारण निर्भ्रान्त नहीं था। वे यदि जरा गम खाकर कुछ शान्ति से विचार करते तो उनकी समझ में भी वृषभसेना की निर्दोषता बहुत जल्दी आ जाती। पर क्रोध ने उन्हें आपे में न रहने दिया और इसलिए उन्होंने एकदम क्रोध से अन्धे हो एक निर्दोष व्यक्ति को काल के मुँह में फेंक दिया। जो हो, वृषभसेना के पवित्र जीवन की उग्रसेन ने कुछ कीमत न समझी, उसके साथ महान् अन्याय किया, पर वृषभसेना को अपने सत्य पर पूर्ण विश्वास था। वह जानती थी कि मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। फिर मुझे कोई ऐसी बात नहीं देख पड़ती कि जिसके लिए मैं दुःख कर अपने आत्मा को निर्बल बनाऊँ। बल्कि मुझे इस बात की प्रसन्नता होनी चाहिए कि सत्य के लिए मेरा जीवन गया। उसने ऐसे ही और बहुत से विचारों से अपने आत्मा को खूब बलवान् और सहनशील बना लिया। ऊपर यह लिखा जा चुका है कि सत्यता और पवित्रता के सामने किसी की नहीं चलती बल्कि सबको उनके लिए अपना मस्तक झुकाना पड़ता है। वृषभसेना अपनी पवित्रता पर विश्वास रखकर भगवान् के चरणों का ध्यान करने लगी। अपने मन को उसने परमात्मा-प्रेम में लीन कर लिया। साथ ही प्रतिज्ञा की कि यदि इस परीक्षा में मैं पास होकर नया जीवन लाभ कर सकूँ तो अब मैं संसार की विषयवासना में न फँसकर अपने जीवन को तप के पवित्र प्रवाह में बहा दूँगी, जो तप जन्म और मरण का ही नाश करने वाला है। उस समय वृषभसेना की वह पवित्रता, वह दृढ़ता, वह शील का प्रभाव, वह स्वभावसिद्ध प्रसन्नता आदि बातों ने उसे एक प्रकाशमान उज्ज्वल ज्योति के रूप में परिणत कर दिया था। उसके इस अलौकिक तेज के प्रकाश ने स्वर्ग के देवों की आँखों तक में चकाचौंध पैदा कर दी। उन्हें भी इस तेजस्विता देवी को सिर झुकाना पड़ा। वे वहाँ से उसी समय आये और वृषभसेना को एक मूल्यवान् सिंहासन पर अधिष्ठित कर उन्होंने उस मनुष्य रूपधारिणी पवित्रता की मूर्तिमान देवी की बड़े भक्ति भावों से पूजा की, उसकी जय-जयकार मनाई, बहुत सत्य

तस्माच्छीलं जिनेन्द्रोक्तं सर्वपापप्रणाशनम्। मनोमर्कटं रुद्ध्वा पालनीयं बुधोत्तमैः ॥७९॥
तच्छ्रुत्वा शीलमाहात्म्यमुग्रसेनो महीपतिः। पश्चातापं तदा कृत्वा तामानेतुं गतः सतीम् ॥८०॥
आगच्छन्त्या महासत्या तथा वैराग्यभावतः। दृष्टो महामुनिस्तत्र वनमध्ये गुणान्वितः ॥८१॥
नाम्ना गुणधरो धीरः सावधिज्ञानलोचनः। तं प्रणम्य लसद्भक्त्या पृष्टो वृषभसेनया ॥८२॥
स्वामिन्पुत्राभवे किं च कृतं कर्म शुभाशभम्। मया तद् ब्रूहि योगीन्द्र दयारससरित्पते ॥८३॥
तन्निशम्य मुनिः प्राह शृणु पुत्रि गदाम्यहम्। त्वं पूर्वस्मिन्भवेऽत्रैव जातासि ब्राह्मणात्मजा ॥८४॥
नागश्रीर्नामतो राजकीये देवकुले सदा। सम्मार्जनं करोष्येव मुनीन्द्रश्चैकदा महान् ॥८५॥
मुनिदत्तोभिधानेन समागत्य निजेच्छया। तत्र निर्वातगर्तायां प्राकाराभ्यन्तरे तदा ॥८६॥
अपराह्णे सपर्यंक-कायोत्सर्गेण संस्थितः। त्वया चाज्ञानभावेन रुष्टया भणितो मुनिः ॥८७॥

है, पवित्रशील के प्रभाव से सब कुछ हो सकता है। यही शील आग को जल, समुद्र को स्थल, शत्रु को मित्र, दुर्जन को सज्जन और विष को अमृत के रूप में परिणत कर देता है। शील का प्रभाव अचिन्त्य है। इसी शील के प्रभाव से धन-सम्पत्ति, कीर्ति, पुण्य, ऐश्वर्य, स्वर्ग-सुख आदि जितनी संसार में उत्तम वस्तुएँ हैं वे सब अनायास बिना परिश्रम किए प्राप्त हो जाती हैं। न यही किन्तु शीलवान् मनुष्य मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है। इसलिए बुद्धिमानों को उचित है कि वे अपने चंचल मनरूपी बन्दर को वश कर उसे कहीं न जाने देकर पवित्र शीलव्रत की, जिसे कि भगवान् ने सब पापों का नाश करने वाला बतलाया है, रक्षा में लगावें ॥६५-७९॥

वृषभसेना के शील का माहात्म्य जब उग्रसेन को जान पड़ा तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। अपनी बे-समझी पर वे बहुत पछताए। वृषभसेना के पास जाकर उससे उन्होंने अपने इस अज्ञान की क्षमा माँगी और महल चलने के लिए उससे प्रार्थना की। यद्यपि वृषभसेना ने पहले यह प्रतिज्ञा की थी कि इस कष्ट से छुटकारा पाते ही मैं योगिनी बनकर आत्महित करूँगी और इस पर वह दृढ़ भी थी परन्तु इस समय जब खुद महाराज उसे लिवाने को आए तब उनका अपमान न हो; इसलिए उसने एक बार महल जाकर एक-दो दिन बाद फिर दीक्षा लेना निश्चय किया। वह बड़ी वैरागिन होकर महाराज के साथ महल आ रही थी। पर जिसके मन में जैसी भावना होती है और वह यदि सच्चे हृदय से उत्पन्न हुई होती है वह नियम से पूरी होती ही है। वृषभसेना के मन में जो पवित्र भावना थी वह सच्चे संकल्प से की गई थी। इसलिए उसे पूरी होना ही चाहिए था और वह हुई भी। रास्ते में वृषभसेना को एक महा तपस्वी और अवधिज्ञानी गुणधर नाम के मुनिराज के पवित्र दर्शन हुए। वृषभसेना ने बड़ी भक्ति से उन्हें हाथ जोड़ सिर नवाया। इसके बाद उसने उनसे पूछा-हे दया के समुद्र योगिराज! क्या आप कृपाकर मुझे यह बतलावेंगे कि मैंने पूर्व जन्मों में क्या-क्या कर्म किए हैं, जिनका मुझे यह फल भोगना पड़ा? मुनि बोले-पुत्री, सुन तुझे तेरे पूर्व जन्म का हाल सुनाता हूँ। तू पहले जन्म में ब्राह्मण की लड़की थी। तेरा नाम नागश्री था। इस राजघराने में तू बुहारी दिया करती

कटकान्मे समायातो राजात्रैवागमिष्यति। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ नग्न त्वं करोम्यत्र सुनिर्मलम् ॥८८॥
 सम्मार्जनं तदा स्वामी महाध्यानेन संस्थितः। स धीरो मेरुवद्गाढं न चचाल स्वयोगतः ॥८९॥
 ततस्त्वयाविवेकिन्या कतवारैर्महामुनेः। तस्योपरि क्रुधा कष्टं पूरयित्वा कृतं सुधीः ॥९०॥
 सम्मार्जनं जगत्पूज्यो यो मुनिः परमार्थतः। तस्य किं क्रियते कष्टं धिग्विमूढस्य चेष्टितम् ॥९१॥
 प्रभाते चागतेनैव राज्ञा तत्र स्वलीलया। क्रीडां प्रकुर्वता वीक्ष्य तं प्रदेशं महाद्भुतम् ॥९२॥
 उच्छ्वाससहितं चैव निःश्वाससहितं तथा। उत्खन्य स मुनिस्तेन शीघ्रं निस्सारितो मुदा ॥९३॥
 त्वया तदा तमालोक्य मुनिं प्रशममन्दिरम्। आत्मनिन्दां तरां कृत्वा रुचिं धर्मे विधाय च ॥९४॥
 महादरेण तस्यैव मुनिनाथस्य निर्मलम्। कृतं चौषधदानं हि महापीडाप्रशान्तये ॥९५॥
 वैयावृत्यं विधायोच्चैः सर्वक्लेशविनाशनम्। पुत्रि तेनैव पुण्येन मृत्वेह त्वं गुणान्विता ॥९६॥
 पुत्री धनपतेर्जाता धनश्रीकुक्षिसंभवा। सती वृषभसेनाख्या विख्याता भुवनत्रये ॥९७॥
 विशिष्टौषधदानेन संजाता तेऽतिनिर्मला। सर्वौषधद्वि सर्वेषां रोगाणां नाशकारिणी ॥९८॥
 कतवारेण यत्स्वामी पूरितो मुग्धया त्वया। तत्पापेनैव लोकेऽभूद्वृथा ते च कलंकता ॥९९॥

थी। एक दिन मुनिदत्त नाम के योगिराज महल के कोट के भीतर एक वायु रहित पवित्र गड्ढे में बैठे ध्यान कर रहे थे। समय सन्ध्या का था। इसी समय तू बुहारी देती हुई इधर आई तूने मूर्खता से क्रोध कर मुनि से कहा—ओ नंगे ढोंगी, उठ यहाँ से, मुझे झाड़ने दे। आज महाराज इसी महल में आयेंगे। इसलिए इस स्थान को मुझे साफ करना है। मुनि ध्यान में थे, इसलिए वे उठे नहीं और न ध्यान पूरा होने तक उठ ही सकते थे वे वैसे के वैसे ही अडिग बैठे रहे, इससे तुझे और अधिक गुस्सा आया। तूने तब सब जगह का कूड़ा-कचरा इकट्ठा कर मुनि को उससे ढँक दिया। उसके बाद तू चली गई। बेटा तू तब मूर्ख थी, कुछ समझती न थी। पर तूने वह काम बहुत बुरा किया था। तू नहीं जानती थी कि साधु-संत तो पूजा करने योग्य होते हैं, उन्हें कष्ट देना उचित नहीं। जो कष्ट देते हैं वे बड़े मूर्ख और पापी हैं। अस्तु, सबेरे राजा आए। उनकी नजर उस कचड़े के ढेर पर पड़ गई। मुनि के साँस लेने से उन पर का वह कूड़ा-कचरा ऊँचा-नीचा हो रहा था। उन्हें कुछ सन्देह सा हुआ। तब उन्होंने उसी समय उस कचरे को हटाया। देखा तो उन्हें मुनि दिख पड़े। राजा ने उन्हें निकाल लिया। तुझे जब यह हाल मालूम हुआ और आकर तूने उन शान्ति के मन्दिर मुनिराज को पहले सा ही शान्त पाया। तब तुझे उनके गुणों की कीमत जान पड़ी। तू तब बहुत पछताई अपने कर्मों को तूने बहुत धिक्कारा। मुनिराज से अपने अपराध की क्षमा कराई तब तेरी श्रद्धा उन पर बहुत हो गई मुनि के उस कष्ट के दूर करने को तूने बहुत यत्न किया, उनकी औषधि की और भरपूर सेवा की। उस सेवा के फल से तेरे पापकर्मों की स्थिति बहुत कम रह गई। बहिन, उसी मुनि सेवा के फल से तू इस जन्म में धनपति सेठ की लड़की हुई, तूने जो मुनि को औषधिदान दिया था उससे तो तुझे वह सर्वौषधि प्राप्त हुई जो तेरे स्नान के जल से कठिन से कठिन रोग क्षण-भर में नाश हो जाते हैं और मुनि को कचरे

तस्मात्पुत्रि न युक्तैव साधुपीडा कदाचन। स्वर्गमोक्षफलप्राप्त्यै कर्तव्यं साधुसेवनम् ॥१००॥
 इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं जगत्तापनिवारणम्। श्रीमद्वृषभसेना सा सदैराग्यपराभवत् ॥१०१॥
 ततश्च परलोकाय मोचयित्वा निजं मुदा। राजादीनां क्षमां कृत्वा भवक्लेशविनाशिनीम् ॥१०२॥
 दीक्षां गुणधराख्यस्य तस्य पार्श्वे सुखप्रदाम्। नत्वा मुनेः पदाम्भोजं संजग्राह विचक्षणा ॥१०३॥
 यथा वृषभसेना सा संजातौषधदानतः। सर्वौषधर्द्धिसम्पन्ना तथा तत्क्रियते बुधैः ॥१०४॥

गुणधरयतिनोक्तं यच्चरित्रं पवित्रं सकलभुवनसिद्धं तन्निशम्य प्रभव्याः।

जिनपतिकथितेऽस्मिन्सारधर्मे बभूवुः परमरुचिपरास्ते सा सती वः पुनातु ॥१०५॥

इति कथाकोशे सुपात्रौषधदानफलप्राप्तश्रीवृषभसेनाख्यानं समाप्तम्।

१११. शास्त्रदानफलप्राप्ताख्यानम्

नत्वा श्रीमज्जिनं देवं संसाराम्बुधितारणम्। वक्ष्येहं श्रुतदानस्योपाख्यानं सौख्यकारणम् ॥१॥
 भारतीं भुवनज्येष्ठां नमामि जिनसंभवाम्। अज्ञानपटलानां या सच्छलाका विनाशिनी ॥२॥

से ढक कर जो उन पर घोर उपसर्ग किया था, उससे तुझे इस जन्म में झूठा कलंक लगा। इसलिए बहिन, साधुओं को कभी कष्ट देना उचित नहीं किन्तु ये स्वर्ग या मोक्ष सुख की प्राप्ति के कारण हैं, इसलिए इनकी तो बड़ी भक्ति और श्रद्धा से सेवा-पूजा करनी चाहिए। मुनिराज द्वारा अपना पूर्वमत सुनकर वृषभसेना का वैराग्य और बढ़ गया। उसने फिर महल पर न जाकर अपने स्वामी से क्षमा कराई और संसार की सब माया-ममता का पेचीदा जाल तोड़कर परलोक-सिद्धि के लिए इन्हीं गुणधर मुनि द्वारा योग-दीक्षा ग्रहण कर ली। जिस प्रकार वृषभसेना ने औषधिदान देकर उसके फल से सर्वौषधि प्राप्त की उसी तरह और बुद्धिमानों को भी उचित है कि वे जिसे जिस दान की जरूरत समझें उसी के अनुसार सदा हर एक की व्यवस्था करते रहें। दान महान् पवित्र कार्य हैं और पुण्य का कारण है ॥८०-१०४॥

गुणधर मुनि के द्वारा वृषभसेना का पवित्र और प्रसिद्ध चरित्र सुनकर बहुत से भव्यजनों ने जैनधर्म को धारण किया, जिन को जैनधर्म के नाम तक से चिढ़ थी। वे भी उससे प्रेम करने लगे। इन भव्यजनों को तथा मुझे सती वृषभसेना पवित्र करें, हृदय में चिरकाल से स्थान से किए रोग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, मत्सरता आदि दुर्गुणों को, जो आत्मप्राप्ति से दूर रखने वाले हैं, नाश करें उनकी जगह पवित्रता की प्रकाशमान ज्योति को जगावें ॥१०५॥

१११. शास्त्र-दान की कथा

संसार-समुद्र से पार करने वाले जिन भगवान् को नमस्कार कर सुख प्राप्ति की कारण शास्त्र-दान की कथा लिखी जाती है ॥१॥

मैं उस भारती सरस्वती को नमस्कार करता हूँ, जिसके प्रकटकर्ता जिनभगवान् हैं और जो आँखों के आड़े आने वाले, पदार्थों का ज्ञान न होने देने वाले अज्ञान-पटल को नाश करने वाली सलाई है।